मेघदूत खण्डकाव्य का व्याकरणात्मक विश्लेषण

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा

पी–एच. डी. उपाधि हेतु उपस्थापित

शोधप्रारूप

संस्कृत विभाग

(मानविकी संकाय)

2 0 2 4

पर्यवेक्षक

(डॉ0 घनश्याम महतो)

अध्यक्ष

स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

शोधार्थी

(कृष्ण कुमार झा)

18, मिश्रटोला, दरभंगा

मोबाईल सं. – 9555379297

ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय

कामेश्वरनगर, दरभंगा

संस्कृत विभाग

शोध शीर्षक : 'मेघदूत खण्डकाव्य' का व्याकरणात्मक विश्लेषण ।

परिचय

मानव समुदाय के परस्पर व्यवहार का माध्यम है– वाणी । इसी वाणी पर जगत् के सभी आचरण व व्यवहार अधिष्ठित हैं। वाणी की इसी महत्ता के कारण ऋग्वेद में इसकी देवता रूप में स्तुति की गई है। वहाँ वाक् को ब्रह्म से उत्पन्न एक महान् शक्ति के रूप में वर्णित किया गया है। वाणी की महत्ता को व्यक्त करने के लिए ही उसे ब्रह्म स्वरूप माना गया है। वाणी में शब्द प्रयोग की महत्ता को यह उक्ति भली–भांति दर्शाती है –

''एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति।।''

शब्द की सुप्रयुक्तता व सम्यग्ज्ञातता निर्भर करती है उसके अर्थ पर, क्योंकि शब्द की महत्ता उसके अर्थ से ही है। कहा भी गया है – **यद्गृहीतमविज्ञातं निगदेनैव शब्द्यते। अनग्नाविव शुष्कैन्धो न तद् ज्वलति कर्हिचित्।।** अर्थात् जिस प्रकार सूखी लकड़ी भी अग्नि के अभाव में नहीं जल पाती है, उसी प्रकार मात्र वाणी द्वारा उच्चारण से पाठ का ज्ञान नहीं हो पाता । शब्दार्थ के संयुक्त महत्त्व को व्यक्त करते हुए यास्क ने कहा है– **'स्थाणुरयं भारहारः किलाभूदधीत्य वेदं न विजानाति। याऽर्थम् योऽर्थज्ञ इत् सकलं भदमश्नुते नाकमेति ज्ञानविधूतपाप्मा।।'** अर्थात् बिना अर्थ जाने वेद पढ़ने वाला वेदपाठी केवल बोझ ढोने के समान है जबकि अर्थ समझ कर वेदाध्ययन करनेवाला दोनों लोकों में कल्याण का अधिकारी होता है।

महाभाष्यकार पतंजलि का भी कथन है कि शब्द का प्रयोग अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए होता है, इसलिए शब्द व अर्थ का नित्य सम्बन्ध है । वाक्यपदीयकार भर्तृहरि ने शब्द व अर्थ को एक ही आत्मा के दो धर्मरूपों में स्वीकार किया है ।

कविकुलगुरु कालिदास ने महाकाव्य रघुवंश के प्रारम्भ में शब्द व अर्थ के सम्बन्ध को स्पष्ट किया है –

''वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये ।

जगतः पितरौ वन्दे पार्वती–परमेश्वरौ ।।''

अर्थात् शब्द एवं अर्थ के समान नित्य मिले हुए संसार के माता–पिता, पार्वती और परमेश्वर को, शब्दार्थों के भलिभांति ज्ञान के निमित्त नमस्कार करता हूँ। यहाँ कवि ने सर्वप्रथम

शब्द तथा अर्थ के नित्य सम्बन्ध को स्वीकार किया है। महाभाष्यकार पतंजलि ने कहा भी है –**''सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे''।** दूसरी बात यह है की शब्द और अर्थ दोनों ही काव्य को जानने में महत्त्वपूर्ण होते हैं। इसी आधार पर सम्भवतः काव्य की परिभाषाओं में शब्दार्थ युगल को स्थान दिया गया। यथा – भामह का **'शब्दाथा सहितौ काव्यम्'**, रुद्रट का **'ननु शब्दाथा काव्यं'**, कुन्तक का **'शब्दाथा सहितौ.........आह्लादकारिणि'**, मम्मट का **'तददोषौ शब्दाथा .... पुनः क्वापि'** आदि काव्यों में शब्द एवं अर्थ दोनों को काव्य का शरीर माना गया है।

इस प्रकार शब्द तथा अर्थ दोनों एक–दूसरे को समान भाव से चमत्कृत करते हुए काव्य का सृजन करते हैं। एक कुशल कवि ही शब्द व अर्थ की सम्पृक्ति को उचित प्रकार से नियोजित करता है। कालिदास ने अपनी रचनाओं में प्रत्येक स्थान पर शब्द व अर्थ की सम्पृक्ति को ध्यान में रखा है। उसका कोई भी शब्द अनर्थक या मात्र छन्दपूर्ति के लिए प्रस्तुत नहीं किया गया है। कालिदास भाषा के संस्कारवान् होने के प्रबल समर्थक हैं, जिसका उल्लेख करते हुए उन्होंने कुमारसम्भव में कहा है–

''प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।

संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया च पूतश्च विभूषितश्च।।''

अर्थात्, जिस प्रकार अतीव ज्योतियुक्त शिखा से दीपक, मन्दाकिनी से गगन और संस्कारवती वाणी से विद्वान् विभूषित होते हैं, उसी प्रकार पार्वती से हिमालय पवित्र व सुशोभित हुआ। कालिदास शब्द या संस्कारयुक्त वाणी के प्रति सचेष्ट थे। रघुवंश में कालिदास पुत्रयुक्त सीता की तेजस्विता की तुलना स्वर के संस्कार से युक्त ऋचा की तेजस्विता से करते हैं–

''स्वरसंस्कारवत्यासौ पुत्राभ्यामथ सीतया।

ऋचेवोदर्चिषं सूर्यं रामं मुनिरुपस्थितः।।''

अब प्रश्न यह उठता है कि वाणी संस्कारवान् कैसे होती है? संस्कार का अर्थ है– शुद्धिकरण अर्थात् वाक् सम्बन्धी अपवित्रताओं की शुद्धि। वाक् सम्बन्धी अपवित्रताओं की शुद्धि कैसे हो ? इस सम्बन्ध में भर्तृहरि का मत है कि जैसे शारीरिक अपवित्रताओं की बुद्धि चिकित्सा से व शुद्धि सम्बन्धी विषयों के अपवित्रताओं की शुद्धि अध्यात्म से होती है, वैसे ही वाक् सम्बन्धी अपवित्रताओं की शुद्धि का माध्यम है **'लक्षणशास्त्र'** और वह लक्षणशास्त्र है– **व्याकरण**।

व्याकरण का कार्य है भाषा विशेष में ओत–प्रोत नियमों का पर्येषण, जिससे उस भाषा–विशेष के अध्ययन में सुविधा हो सके। पुराने समय में न केवल व्याकरण बल्कि अन्य शास्त्रों में भी नियमों को सूत्रवद्ध करने की परम्परा थी, इसके पीछे उद्देश्य कुछ भी हो सकता है, चाहे उन्हें भावी परम्परा के लिए सुरक्षित रखने की कामना हो अथवा ये सूत्र किसी अवधारणा का लघु रूप हो जिसे पढ़ते ही उस अवधारणा का वक्तव्य पाठकों को समझ में आ जाए। सूत्रों के निर्माण की यह प्रवृत्ति ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र में रही है, जो वर्तमान समय में भी अनवरत चल रही है। जैसे गणित में जब गुणा, भाग, जोड आदि बहुत से बीजगणितीय

चिह्न एक साथ हो तो उस समस्या को हल करने के लिए गणतीय सूत्र (BODMAS) की सहायता ली जाती है ।

अर्थात् पहले B से Bracket, O से Off, D से Division, M से Multiplication, A से Addition, और अन्त में S से Subtraction की क्रिया क्रमानुसार की जाती है। इस तरह के अध्ययन – सूत्र व्यक्ति की समझ में तो सहज आ जाते हैं किन्तु दूसरे व्यक्ति को तब तक समझ में नहीं आते, जब तक उन्हें विस्तार से समझाया न जाए। यही स्थिति व्याकरण के सूत्रों की भी थी। इसी के फलस्वरूप उनके अर्थों में मतभेद भी उत्पन्न हुए। अतएव सूत्रों के लिए प्रथमतः वृत्तियाँ अनिवार्य हो गईं और फिर भाष्य ।

साहित्यिक समीक्षा

व्याकरण में जिन सूत्रों की रचना हुई वह केवल उस समय की भाषा के आधार पर हुई होगी। पाणिनि ने अपने समय की भाषा का विश्लेषण कर ऐसे सूत्रों की रचना की जो कि उस भाषा के अध्ययन में सहायक हो। लेकिन बाद के काल में भी उन नियमों को भाषा की शुद्धि–अशुद्धि के लिए प्रमाणभूत मान लिया गया और भाषा को व्याकरण के नियमों में बांध दिया गया और कविजन भी पाणिनि के उन नियमों में बंधकर रचना करते रहे। परन्तु कुछ महाकवि ऐसे भी हुए, जिनके शब्द प्रयोगों को यह लक्षणशास्त्र बांध नहीं पाया। ऐसे कवियों में बाणभट्ट, कालिदास इत्यादि कवि ही गिने जाते हैं जिन्होंने पाणिनि की परम्परा से हटकर कुछ नए प्रयोग किए। उस श्रेणी के ये कवि यदि किसी सीमा में बंध जाते तो निश्चित रूप से उनकी लेखनी का प्रवाह अवरुद्ध हो जाता, क्योंकि भाषा को बांधने का प्रयास करने पर तो उसका प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि व्याकरण की सीमा को लांघा जाए, क्योंकि व्याकरण एक अनुशासन है, जिससे भाषा में बनी रहती है। बदलते समय की बदलती भाषा के प्रभाव से कुछ गुणात्मक परिवर्तन का अवकाश हमेशा रहा है। ये वे परिवर्तन हैं जिनसे व्याकरण के अनुशासन के अस्तित्व को कोई खतरा नहीं है। कालिदास की प्रवृत्ति ऐसी ही है, जहाँ उन्होंने पाणिनि के व्याकरण का पालन किया, वहीं उनकी शैली में नवीन गुणात्मक परीक्षण कर शब्दों का प्रयोग भी किया। ये प्रयोग आवश्यकता व सौन्दर्य के सामंजस्य पर किए गए, इसलिए ये आर्ष प्रयोग कहे गए । कालिदास द्वारा किए गए ऐसे प्रयोग कालिदास के पश्चात् भी होते रहे ।

इस सम्बन्ध में कालिदास रचित ग्रन्थों के टीकाकारों की भूमिका बड़ी विचित्र रही है। उन्होंने ऐसे शब्दों की सिद्धि या तो अन्य व्याकरण ग्रन्थों से करने की चेष्टा की अथवा निरंकुश कवयः कह कर उसे ही उचित मान लिया ।

काव्य में दोषों से नितान्त मुक्ति सम्भव नहीं। विश्वनाथ का मत है कि **'निर्दोषस्यैकान्तमसंभवात्'**। कालिदास की यह विशेषता है कि व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों को करते हुए भी वे काव्य के आत्मतत्त्व पर आघात नहीं करते। उनके टीकाकारों ने इन प्रयोगों पर सकारात्मक व नकारात्मक दोनों तरह की व्याख्याएँ की है। कालिदास के काव्य मेघदूत में प्रयुक्त कुछ ऐसे ही अपाणिनीय प्रयोगों के उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किए गए हैं–

1. भवितासि – मेघदूत में 'अन्तः शुद्धस्त्वमसि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः' का प्रयोग है। इसमें भविता को यदि तृच् प्रत्ययान्त माना जाए तो यह प्रयोग ठीक है, लेकिन यहाँ यदि भू धातु, लुट् लकार, मध्यम पुरुष, एक वचन का भवितासि रूप माने तो यह मानना पड़ेगा कि इसे खण्डित रूप में प्रस्तुत किया गया है, जैसे कि मेघदूत के टीकाकार दक्षिणावर्त ने माना है । वल्लभदेव का भी यही मानना है कि **असि** भविता – भवितासि का खण्डित रूप है, जो पाणिनीय व्याकरण के प्रतिकूल है। इसलिए उन्होंने असि के स्थान पर अपि का अनुमोदन किया है, चाहे व्याकरण की दृष्टि में वाक्य को इस तरह से खण्डित रूप में प्रयोग करना अशुद्ध हो तथापि कालिदास ने ऐसे प्रयोग बहुधा किए हैं, यथा प्रभ्रंशयाञ्चकार को **'प्रभ्रंशयां यो नहुषं चकार'** में खण्डित कर प्रयुक्त किया है। इसी प्रकार –

''तं पातयां प्रथममास पपात पश्चात्।

संयोजयां विधिवदास समेत बन्धुः।।''

इन उदाहरणों में पातयामास व संयोजयामास का खण्डित प्रयोग है। ये प्रयोग पाणिनि नियम के अनुकूल न होने पर भी इतना सौन्दर्य वर्धक है कि कालिदास के पश्चात् अन्य कवियों ने भी इसका अनुकरण किया है। यथा– भट्टिकाव्य में **'उक्षां प्रचक्रुर्नगरस्य मार्गान्।'**

2. दृष्टभक्तिः – ***'शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या।'*** मेघदूत में कालिदास का प्रयोग दृष्टभक्ति व इसी प्रकार का दृढभक्ति भी अपाणिनीय माने गए हैं। **दृष्टा भक्तिः यस्य सः तथा दृढा भक्तिः यस्य सः** विग्रह में दृष्ट व दृढ़ शब्द स्त्रीलिंग हैं जिसे समास में पुंवद्भाव किया गया है। इस तरह की समस्याओं में **'स्त्रियाः पुंवद्...... प्रियादिषु'** सूत्र से स्त्रीवाचक शब्द को पुंवाचक के समान बना लिया जाता है, लेकिन इस सूत्र के कुछ नियम भी हैं। जैसे – पूरणी, संख्या प्रियादियों से परे रहते हुए यह सूत्र काम नहीं करता और भक्ति शब्द प्रियादियों में परिगणित होता है। इसलिए व्याकरण की दृष्टि से दृष्टाभक्ति व दृढाभक्ति रूप ही बनता है। मल्लिनाथ ने अपने टीका में इन प्रयोगों को व्याकरण सम्मत सिद्ध करने का प्रयास किया है। वे भक्ति के पूर्व वाले शब्द को **'सामान्ये नपुंसकम्'** सूत्र से नपुंसकलिंग मानकर उसका बहुव्रीहि समास कर देते हैं। 'दृष्ट वस्तु है भक्ति जिसकी' व 'दृढ वस्तु है भक्ति जिसकी' । इस तरह दृष्ट व दृढ शब्दों को व भक्ति शब्द को विभिन्न लिंगों में रखकर दृष्टभक्ति व दृढभक्ति को व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध ही मानते हैं। यह सब खींचातानी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। कवि को सम्भवतः न तो दृष्टाभक्ति विवक्षित है और न ही दृष्टभक्ति को व्याकरण सम्मत सिद्ध करने की खींचातानी ।

3. तुलयितुम् – इसी तरह मेघदूत में तुलयितुम् शब्द का प्रयोग हुआ है **अन्तःसारं घन ! तुलयितं नानिलः शक्ष्यति त्वाम्।** पाणिनीय व्याकरण की दृष्टि से यह प्रयोग भी अशुद्ध है, क्योंकि **'तुल उन्माने'** धातु चुरादिगण की है और चुरादिगण की धातुओं में ***सत्यापपाश.... णिच्*** सूत्र से णिच् का विधान है। पाणिनीय सूत्र ***सत्यापपाश....णिच्*** 3.1.25 के अनुसार सूत्रोक्त बारह प्रतिपादिकों व चुरादिगण की धातुओं से परे णिच् प्रत्यय होता है व इससे लघुपद गुण होकर चोरयति आदि रूप बनते हैं । इसी नियम के आधार पर तोलयितुम् रूप बनना चाहिए न कि तुलयितुम्। टीकाकार चारित्रवर्धन के मत में **तुलया सादृश्येन गृह्णाति** इस अर्थ में तुला से प्रातिपदिकात् णिजन्त होकर तुलयितुम् रूप बना है, लेकिन **'तुल उन्माने'**

चूँकि चुरादिगणीय है इसलिए तोलयितुम् रूप बनना चाहिए। दक्षिणावर्त ने भी अपनी प्रदीप टीका में यही प्रश्न उठाया **ननु तुल उन्माने इति अयं धातुश्चौरादिः तुल इति कथं व्युपन्नः**। इसके उत्तर में वे स्वयं कहते हैं– **'णिचोऽनित्यत्वाद् तुला इत्यपि भवति माधवीय'** धातुवृत्ति के पृष्ठ 544 में भी णिच् की अनित्यता को स्वीकार कर तुला को उचित माना है ।

4. कतिपयदिन – मेघदूत में **संपत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसाः दशार्णाः** में कतिपयदिन शब्द का प्रयोग है जो कि पाणिनि व्याकरण के विरुद्ध है । क्योंकि **पोटायुवतिस्तोककतिपय. ....धूर्तैर्जातिः** (2.1.65) सूत्र से कतिपय शब्द का उत्तर में प्रयोग होकर दिनकतिपय शब्द होना चाहिए। इस सूत्र के अनुसार पोटा आदि शब्दों के साथ जातिवाचक सुबन्त का तत्पुरुष समास होता है। फलस्वरूप इन पोटा, कतिपय आदि का प्रयोग उत्तर पद के रूप में होता है जैसे– इभपोटा, इभयुवति इत्यादि। टीकाकार दक्षिणावर्तनाथ व पूर्णसरस्वती के अनुसार साहित्य में ऐसे प्रयोग प्रायः होते हैं। जैसे भर्तृहरि ने भी **कतिपयपुरस्वाम्ये पुंसा क एष मदज्वर** में कतिपय का प्रयोग पूर्व में किया है। भरतमल्लिक ने कुछ ऐसे मत प्रस्तुत किए हैं, जिनमें इस शब्द के समाधान का प्रयास है। यथा कतिपय को राजदन्तादि के समान समास मानकर इसे व्याकरण सम्मत सिद्ध किया जा सकता है अथवा इसके स्थान पर अकतिपय पाठ माना जा सकता है। सम्भवतः यहाँ कवि को यह सब विवक्षित नहीं, उसे कतिपयदिन प्रयोग ही अभीष्ट है चाहे वह अपाणिनीय ही क्यों न हो।

5. विश्रामहेतोः – मेघदूत में **'नीचः राख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतोः'** (पू० मे० 26) में प्रयुक्त विश्राम शब्द विश्रम् में भावार्थक घञ् प्रत्यय लगाकर बनता है। यह शब्द भी टीकाकारों की दृष्टि में पाणिनीय व्याकरण के विरुद्ध है। व्याकरण के अनुसार यहाँ विश्रामहेतोः पाठ कहना चाहिए क्योंकि सूत्र **'नोदात्तोपदेशस्य मान्तस्यानाचमेः'** (7.3.34) के अनुसार आङ् पूर्वक चम् धातु से भिन्न उदात्तोपदेशक मकारान्त धातु को चिण् व कृत्संज्ञक ञित् णित् प्रत्यय परे रहते वृद्धि नहीं होती। अतः घञ् प्रत्ययान्त विश्रम् को विश्राम करना इस नियम के प्रतिकूल है। दक्षिणावर्त व मल्लिनाथ दोनों यह मानते हैं कि पाणिनि के उपरोक्त सूत्र से वृद्धि का निषेध होने पर भी चान्द्रव्याकरण के सूत्र **विश्रामो वा** से विकल्पेन वृद्धि प्राप्त हो जाती है। जैनेन्द्र– महावृत्ति में विश्रम शब्द को उचित माना है। जैनेन्द्र के सूत्र **'न सेटस्तासि मोऽवमिकमिचमः'** की वृत्ति में विश्राम को प्रमाद प्रयोग कहा है। मेघदूत में इस शब्द के प्रयोग पर टिप्पणी करते हुए वल्लभदेव इसे कवि का प्रमाद कहते हैं व **विश्रान्ति हेतोः** पाठ अनुमोदित करते हैं।

6. शिञ्जावलयसुभगै – उत्तरमेघ में **'तालैः शिञ्जावलयसुभगैः नर्तितः कान्तया मे'** में शिञ्जावलय का प्रयोग व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं। यह शब्द **'शिजि अव्यक्तेशब्दे'** धातु से बना है, यह धातु आत्मनेपदी धातु है। जबकि शिञ्जद् शब्द शतृ प्रत्ययान्त होने से परस्मैपदीय रूप है, इसलिए स्थिरदेव, दक्षिणावर्त, चारित्रवर्धन व मल्लिनाथ आदि विद्वान **'शिञ्जावलय'** को शानच् प्रत्ययान्त आत्मनेपदीय रूप में मानते हैं। वल्लभदेव की दृष्टि में परस्मैपद प्रयोग कवि का प्रमाद है अथवा **'पृच्यन्ता अनुदात्तेतः'** के आधार पर होने वाली आत्मनेपदी विधि को अनित्य मानकर समाधान निकाला जा सकता है। भरतमल्लिक के अनुसार यह धातु कहीं आत्मनेपदीय व कहीं परस्मैपदीय रूप में मिलती है यहाँ वे इसका

शतृ प्रत्ययान्त परस्मैपद रूप ही उचित मानते हैं । सारोद्धारिणी टीकाकार इसका समाधान इस प्रकार निकालते हैं कि शिजि अव्यक्तेशब्दे इस धातु से शिङ्क्ते रूप बनता है और **पचादित्वात् अच्** से शिञ्ज रूप बनता है, स इव चरति ऐसा विग्रह करके इसमें क्विप् का लोप हो जाता है फलस्वरूप यह परस्मैपदीय हो जाता है और शिञ्जति इति वर्तमान में शतृ प्रत्यय लगकर यह रूप सिद्ध हो जाता है। इस प्रकार वे इसका परस्मैपदीय रूप ही उचित मानते हैं, जबकि चारित्रवर्धन शिञ्जद् को ही उचित मानकर उसकी रूपसिद्धि इस प्रकार करते हैं कि शि में घञर्थक 'क' प्रत्यय से शिञ्ज बनाकर, पुनः क्विप् लगाकर शतृ प्रत्यय लगाने से शिद् बनता है। शिजि चूंकि आत्मनेपद की धातु है अतः शिञ्जावलय पाठ ही उचित है। सायणाचार्य ने आत्मनेपदीय को अनित्य बताकर शिञ्जद् रूप को भी मान्यता दी है। वस्तुतः शिञ्जावलय पाठ रखने पर भी भावार्थ में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

इस प्रकार कालिदास ने अपाणिनीय शब्दों का सफल प्रयोग किया है। यही नहीं उन्होंने व्याकरण सम्मत प्रयोगों का भी सुन्दर परीक्षण किया है। व्याकरण सम्मत इन शब्दों पर टीकाकारों की व्याख्याओं में कुछ भिन्नता आ जाती है। एक टीकाकार एक शब्द की सिद्धि जिस सूत्र से करता है तो दूसरा टीकाकार उसे अनुचित मानकर उसकी सिद्धि अन्य सूत्रों से करता है। कहीं–कहीं टीकाकारों के दृष्टिकोणों में अन्तर का एक कारण पाठ भेद भी है। कालिदास के पाणिनीय प्रयोगों पर टीकाओं के दृष्टिकोण वैविध्य के कुछ उदाहरण निम्नवत हैं–

1. एकपत्नीम् – मेघदूत में प्रयुक्त एकपत्नीम् शब्द की व्याकरणिक व्याख्या में टीकाकार दक्षिणावर्तनाथ ने **'एका असपत्नीका पत्नी यज्ञसंयोगार्हा वा इति'** कहकर इसे कर्मधारय समास माना है, जबकि चारित्रवर्धन व मल्लिनाथ ने **'एकः पतिः यस्याः सा ताम् एकपत्नीम्'** कहकर बहुव्रीहिसमास माना है। चारित्रवर्धन के अनुसार एकपत्नी का पत्नी शब्द **पत्युन यज्ञसंयोगे** (4.1.33) से बना है। इस सूत्र के अनुसार यज्ञ–संयोग अर्थ के गम्यमान होने पर पति के इकार **'अलोऽन्तस्य'** से अन्तिम इकार को ही होगा और नकार होकर पत्न रूप बनता है, जिसमें उपरोक्त सूत्र से ङीप् होकर पत्नी शब्द बना। जबकि मल्लिनाथ **'नित्यं सपत्न्यादिषु'** (4.1.35) सूत्र से ङीप् प्रत्यय और पति शब्द के त् को न होकर एकपत्नी शब्द की सिद्धि करते हैं।

2. गण्डस्वेदापनयरुजाक्लान्त – मेघदूत में प्रयुक्त इस शब्द में मल्लिनाथ रुजा शब्द को भिदादियों में मानकर अङ्ग प्रत्ययान्त मानते हैं। मल्लिनाथ रुजाक्लान्त को एक समस्त पद मानते हैं, जबकि भरतमल्लिक रुजा को क्लान्त से समस्त पद नहीं मानते उनके अनुसार रुजाक्लान्त को समस्तपद के रूप में भी कहते हैं। लेकिन यहाँ रुजा शब्द रुज् का तृतीयान्त रूप है।

3. अभिलीन – मेघदूत में **'पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः'** में प्रयुक्त अभिलीन शब्द अभि उपसर्गपूर्वक **ली श्लेषणे** धातु से बना है। मल्लिनाथ इसे **कर्तरि क्तः** सूत्र से क्त प्रत्ययान्त मानते हैं। यहाँ कुछ टीकाकार इस शब्द का क्त–प्रत्ययान्त होना अनुचित मानते हैं। इसका उल्लेख भरतमल्लिक ने अपनी टीका में किया है। **'भुजतरुवनमभिलीनः'** यह सकर्मक होने के कारण **कर्तरि क्तः** से क्त प्रत्ययान्त नहीं होना चाहिए। इस शंका के समाधान

में वे स्वयं कहते हैं कि अभिलय भी गति का एक प्रकार है अतः गत्यर्थक होने से इसमें **कर्तरि क्तः** हो जाएगा अथवा **'भुजतरुवनमभि'** इसे लक्ष्य करके **'लीन'** अकर्मक होने से क्त हो जाएगा।

4. तोयोत्सर्गस्तनितविमुखः – मल्लिनाथ इस पद का **तोयोत्सर्गस्तनिताभ्य वृष्टिगर्जिताभ्यां मुखरः शब्दायमानः** द्वन्द्व–विग्रह मानते हैं। चारित्रवर्धन उसका विग्रह **तोयोत्सर्गेण जलत्यागेन यत्स्तनितम् तेन मुखरः** इस रूप में करते हैं। मल्लिनाथ का कथन है कि यदि इस पद का **तोयोत्सर्ग सहितं स्तनितं** विग्रह करे तो वह अनुचित होगा, क्योंकि इस विग्रह में स्तनित पद प्रमुख होगा जो अनिष्ट माना जाएगा। द्वन्द्व समास में यह नियम होता है कि अल्प अच् वाले शब्दों का पूर्वनिपात होता है। लेकिन मल्लिनाथ कहते हैं कि **लक्षणहेत्वोः क्रियायाः** (3.2.126) सूत्र से विपरीत निर्देश होने पर पूर्व निपात अनित्य हो जाएगा।

5. गाण्डीव धन्वा – मेघदूत के **'राजन्यानां शितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा'** में प्रयुक्त गाण्डीव व धनुस् (धन्वा) दोनों ही शब्द **अर्धर्चाः पुंसि च** में अर्धर्चादि–गण में पढ़े जाते हैं। अतः इनका उभयलिंग प्रयोग होता है। मल्लिनाथ भी इसे उभयलिंगी मानते हैं, उनके अनुसार **गाण्ड्यजगाद् संज्ञायाम्** (5.2.110) सूत्र से गाण्डी में मत्वर्थीय **'व'** प्रत्यय है। इस सूत्र के अनुसार यदि प्रत्ययान्त संज्ञा शब्द हो तो गाण्डी और अजग शब्दों से मत्वर्थ में **'व'** प्रत्यय होता है। गाण्डीवधन्वा का बहुव्रीहि समास में विग्रह करते हुए दक्षिणावर्त ने **'धनुषश्च'** (5.4. 132) सूत्र से इसमें अनङादेश माना है। इस सूत्र के अनुसार धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को अनङादेश हो जाता है, जबकि मल्लिनाथ के अनुसार यहाँ **वा संज्ञायाम्** से अनङादेश होगा। यह सूत्र संज्ञा विषय में धनुष् शब्दान्त बहुव्रीहि को विकल्प से अनङादेश करता है ।

6. प्रबलरुदितोच्छूननेत्रम् – मेघदूत में प्रयुक्त उच्छून शब्द **टुओश्विगतिवृद्धयो** धातु से बना है। दक्षिणावर्त ने इस धातु में निष्ठा मानकर **वचिस्वपियजादीनां किति** (6.1.15) सूत्र से सम्प्रसारण का यह रूप सिद्ध किया है। मल्लिनाथ ने इसकी रूप सिद्धि अधिक विस्तार से की है श्वि में **कर्तरि क्तः** से क्त करके, **ओदितश्च** (8.2.45) से त को न करने पर **वचिस्वपि यजादीनां किति** से व को सम्प्रसारण उ तथा **सम्प्रसारणाच्च** (6.1.108) से पूर्वरूप एकादेश होकर शुन होगा तब उकार को **हलः** (6.4.2) से दीर्घ होकर शून हो जाएगा लेकिन वे स्वयं ही सम्प्रसारण से इस शब्द की सिद्धि का विरोध करते हैं, उनके अनुसार सम्प्रसारण से नहीं बल्कि वकार को ऊङादेश करने पर इसकी रूपसिद्धि होगी। मल्लिनाथ सम्प्रसारण से इसकी सिद्धि को प्रमादिक मानते हैं, क्योंकि सम्प्रसारण अनुचित होगा। सम्प्रसारण करने के लिए इकार अन्त्य नहीं बल्कि वकार अन्त्य होना चाहिए। अतः ऊङादेश द्वारा इसकी सिद्धि सम्भव है।

कालिदास एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने परम्परा से हटकर नए प्रयोग किए हैं। वे इसके औचित्य व अनौचित्य का विचार समीक्षकों पर छोड़ते हैं, रघुवंश में उन्होंने लिखा है–

तं सन्तः श्रोतुमर्हन्ति सदसद्व्यक्तिहेतवः ।

हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा ।

अर्थात् भले और बुरे का विचार करने वाले समीक्षक लोग ही उसे सुनने के योग्य हैं क्योंकि स्वर्ण की शुद्धता या श्यामता अग्नि में ही देखी जाती है। वास्तव में व्याकरण के अनुशासन को नकारा नहीं जा सकता, लेकिन आवश्यकता व सौन्दर्य के अनुरोध पर किए गए अपाणिनीय प्रयोगों को भी साहित्य शास्त्री मान्यता देते रहे हैं ।

व्यञ्जनात्मक शैली पर मेघदूत की व्याख्या

भारतीय साहित्यशास्त्र में ध्वनि तत्त्व की अपनी एक मौलिक उद्‌भावना है। ध्वनिसिद्धान्त् इस बात का पुष्कल प्रमाण है कि भारतीय साहित्यशास्त्र अन्य शास्त्रों के उच्छिष्ट का संकलनमात्र नहीं है, अपितु उसकी भी चिन्तन की अपनी परम्परा है ।

ध्वनि–सिद्धान्त की सबसे बड़ी विशेषता है व्यञ्जना नामक वृत्ति, जिसने इसे व्याकरण एवं दर्शन आदि शास्त्रों की कोटि में लाकर खड़ा कर दिया, जिससे ध्वनि वाङ्मय की सभी विधाओं के आचार्यों की विवेचना का विषय बन गया। ध्वनि काव्य की आत्मा है– **काव्यस्यात्मा ध्वनिः** ध्वनि की संस्थिति, विशिष्ट भावाभिव्यक्ति के लिए प्रयुक्त शब्द – भङ्गिमा की विचित्रता में सुरक्षित रहती है। दूसरे शब्दों में सुप्रयुक्त शब्द के अर्थ का अनुरणन ही ध्वनि है। शब्द के अर्थ की दो शक्तियाँ, अभिधा व लक्षणा से विलक्षण तीसरी शक्ति है– व्यञ्जना।

इसी शक्ति के माध्यम से प्रस्फुटित चमत्कार भरा अर्थ ध्वनि के नाम से अभिहित किया गया है। अभिधा व लक्षणा नामक शब्द के दो व्यापार व्याकरण तथा मीमांसा प्रभृति दर्शनशास्त्रों में सुप्रसिद्ध एवं सर्वग्राह्य हैं। संकेतग्रह की सहायता से वाच्य की प्रतीति कराने वाला व्यापार अभिधा कहलाता है, इसे मुख्यवृत्ति भी कहते हैं। अतः इससे प्रतीत होने वाला अर्थ मुख्यार्थ या वाच्यार्थ कहलाता है । वाक्य में शब्द के इस मुख्यार्थ की प्रतीति में बाधा होने पर उससे सम्बन्धित ही किसी अन्य अर्थ की कल्पना 'प्रयोजन' विशेष या परम्परा प्राप्त प्रयोग 'रूढि' के आधार पर करना ही लक्षणा है । अतएव इसे गुणवृत्ति पद से भी अभिहित किया जाता है। व्यञ्जना व्यापार लक्षणा से भी विलक्षण हैं, इसमें अभिधा की तरह न तो संकेतग्रह की अपेक्षा होती है और न ही लक्षणा के समान मुख्यार्थ बाध आदि तीन हेतुओं का होना आवश्यक है। फिर भी वाक्य में विशेष प्रकार के शब्दों के प्रयोग से प्रकरण पर्यालोचन द्वारा वाच्य या लक्ष्य से भिन्न अर्थान्तर की जो प्रतीति होती है, वह एकमात्र व्यञ्जना व्यापार का विषय है। यह इतना व्यापक है कि वस्तु अलङ्कार और रसादि सभी इसमें अन्तर्निहित हैं । अर्थ के अभिव्यञ्जन की यह शैली अनूठी है। मोती के अन्दर छाया की जैसी तरलता होती है, वैसी ही कान्ति की तरलता को अङ्ग का सलोनापन या लावण्य कहते हैं ।

संस्कृत साहित्य के कुछ आचार्यों को यह लावण्य वक्रोक्ति के रूप में मान्य है। वक्रोक्ति काव्यजीवितम् के उद्घोषक आचार्य कुन्तक ने कहा है–

प्रतिभा प्रथमोद्‌भेदसमये यत्र वक्रता ।

शब्दाभिधेययोरन्तः स्फुटतीव विभाव्यते।।

वर्ण, पद, वाक्य का सुन्दर प्रयोग ही अन्तःस्पृक् रमणीय छाया की वक्रता का मूल कारण है । इस प्रकार काव्य में शब्दों के चयन का विशेष महत्त्व होता है। भारतीय काव्य

शास्त्र के सभी सम्प्रदायों के आचार्यों ने शब्दार्थचयन पर विशेष बल दिया है । कुन्तक के अनुसार–

शब्दो विवक्षितार्थैकवाचकोऽन्येषु सत्स्वपि ।

अर्थः सहदयाह्लादकारिस्वस्पन्द सुन्दरः।।

अर्थात् अन्य बहुत से पर्यायवाची शब्दों के रहते हुए भी कहने के लिए अभिप्रेत अर्थ का वाचक एक ही शब्द होता है। आचार्य वामन का अवक्षेपण भी काव्यभाषा की पदसंघटना में उपयुक्त पदों को रखने तथा अनुपयुक्त पदों को हटाने की प्रक्रिया के रूप में इसी चयन प्रक्रिया का संकेत करता है। इतना ही नहीं उन्होंने प्रथम अधिकरण का तृतीय अध्याय ही **शब्दपरिपाक** विषय पर लिखा है। शब्दों की चयन प्रक्रिया के सम्बन्ध में आचार्य आनन्दवर्धन का भी कथन है–

सोऽर्थस्तदव्यक्तिसामर्थ्ययोगी शब्दश्च कश्चन ।

यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयो तौ शब्दार्थों महाकवेः।।

यहाँ भी शब्दचयन में प्रसंग की अभिव्यञ्जना को प्रमुखता दी गई है। आचार्य क्षेमेन्द्र ने तो अपनी सम्पूर्ण कृति में उपयुक्त शब्दों के चयन एवं अनुपयुक्त के परिहार का ही विश्लेषण किया है।

काव्यभाषा में चयन की आवश्यकता पर इसलिए विशेष बल दिया गया है कि किसी भी भाषा में पर्यायवाची कहे जाने वाले कोई भी दो शब्द एक ही भावछटा के अभिव्यञ्जक नहीं होते, प्रत्येक शब्द क अपना–अपना ध्वन्यात्मक प्रभाव होता है, जिसके कारण काव्य के भाव में ही अन्तर आ जाता है। इसलिए आनन्दवर्धन ने कहा है कि शब्दों व अर्थों को महाकवि को यत्नपूर्वक पहचानना चाहिए।

ध्वन्यात्मक प्रभाव से चमत्कारी अथवा अतिशय व्यंग्यार्थ वाले काव्य को विद्वान् लोग उत्तमकाव्य या ध्वनिकाव्य कहते हैं– **इदमुत्तममतिशयिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्बुधैः कथितः।** काव्य का यह चमत्कार किसी शब्द विशेष पर निर्भर होता है, जिसकी अर्थगत सूक्ष्मता सन्दर्भ विशेष में प्रतिफलित होती है। जैसे – कुमारसम्भव में **'द्वयं गतं सम्प्रति शोचनीयतां समागम प्रार्थनया कपालिनः'** में शिव को अभिहित करने वाले पिनाकी व कपाली दोनों शब्द छन्दयोजना में संगत हैं । अर्थबोध की दृष्टि से भी दोनों शिव के वाचक हैं लेकिन पिनाकी शब्द शोचनीयता के भाव को प्रतिबिम्बित नहीं करता जबकि कपाली से शोचनीयता और अधिक व्यंजित हो जाती है ।

महाकवि कालिदास ने अपने सम्पूर्ण कृतियों में रसानुकूल शब्दों का प्रयोग किया है और साथ ही साथ भाषा में ध्वन्यात्मक सौन्दर्य का समुचित समावेश भी किया है। उनकी कृतियों में ध्वनि को उजागर करने में उनके समीक्षकों की विशेष भूमिका रही है। उन्होंने कृतियों के शब्दों, उनके व्यञ्जक अर्थों तथा ध्वन्यात्मक प्रभावों पर विचार किया है। कुछ स्थान ऐसे भी है जहाँ समीक्षकों ने जानबूझ कर ध्वनि आरोपित करने की चेष्टा की है, जहाँ सम्भवतः कवि के मन में उन शब्दों के चयन के समय यह भाव न रहा हो। लेकिन प्रत्येक

स्थान पर ऐसा हुआ है, ऐसा भी नहीं है। मेघदूत में कतिपय ऐसे ही उदाहरण यहाँ प्रस्तुत हैं।

1. अस्तंगमितमहिमा – यक्ष की महिमा के विशेषण के रूप में अस्तंगमित शब्द का प्रयोग किया गया है। यक्ष की दिव्य शक्तियाँ शाप द्वारा नष्ट हो गई है। यदि ऐसा न होता तो वह अदृष्ट रूप से अपनी पत्नी के पास जा सकता था अथवा मन में ही उसकी दशा का मनन कर सकता था, लेकिन उसकी शक्तियाँ छीन ली गई है। यहाँ कवि ने उसकी महिमा समाप्ति के लिए नष्ट शब्द की अपेक्षा 'अस्तंगमित' शब्द का प्रयोग किया है। पूर्णसरस्वती ने अस्त के प्रयोग की महत्ता प्रतिपादित करते हुए कहा है कि कवि ने अस्त के द्वारा यक्ष के शाप के प्रसंग में यह संकेत दिया है कि जिस प्रकार सूर्य अस्त होकर पुनः उदय को प्राप्त करता है, ठीक उसी भांति यक्ष भी शापावसान के पश्चात् पुनः दैवीय शक्ति को प्राप्त कर लेगा ।

2. जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु – रामगिरि आश्रम के इस विशेषण में भी व्यंग्यार्थ निहित है। यक्ष की जो मानसिक स्थिति है, उस दृष्टिकोण से उसे ऐसे स्थान पर रहना चाहिए जो पवित्र, पुण्यकारी, दिव्य व मनोहर हो। चारित्रवर्धन के अनुसार इस विशेषण से पतिव्रता के संयोग से पुण्यत्व निरूपित है। पूर्णसरस्वती इससे दिव्यता सूचित होना मानते हैं। भरतमल्लिक के अनुसार, इस शब्द से स्थान की अतिपवित्रता, मनोहरता व वासयोग्यता सूचित होती है। इस प्रकार प्रत्येक दृष्टिकोण से यह स्थान उचित है, यह ध्वनित होता है।

3. वर्षभोग्येण – यक्ष के लिए शाप कितना दुःसह है यह ध्वनित होता है– वर्षभाग्येण पद से। भरतमल्लिक के अनुसार वियोग में तो एक ऋतु भी दुःसहनीय हैं तो छह ऋतुओं का सम्वत्सर शाप की दुःसहता सूचित करता है। उन्हीं के मत में वर्ष का अर्थ यदि किया जाए तो भी शाप की दुःसहता व्यञ्जित होती है, क्योंकि देवताओं का मनुष्यलोक में वास नरकतुल्य है। अतः शाप यहाँ की भूमि पर भोगने के कारण शाप की दुरूमहता द्योतित होती है।

4. रामगिर्याश्रमेषु – वचनों के द्वारा भी व्यंग्यार्थ प्रकट होते हैं। इसका एक उदाहरण **निशासमयेनेव शापेनान्तर्हितस्य दिवसमुख इव शापावसाने सूर्यस्यैव तस्य यथापुरमुदेष्यत्वात्** है रामगिर्याश्रमेषु में बहुवचन का प्रयोग। दक्षिणावर्त व भरतमल्लिक के अनुसार आश्रमेषु प्रयोग से विरहखेद में यक्ष का एक स्थान पर न टिक पाना द्योतित होता है। रामगिरि के आश्रमों में शरण लेने का एक प्रयोजन यह भी ध्वनित होता है कि जिस प्रकार राम ने यहाँ विरह काल व्यतीत कर सीता को प्राप्त किया वैसे ही स्थान की महिमा के कारण यक्ष भी प्रिया को प्राप्त कर लेगा ।

5. बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या – चित्रस्थ उद्यान के लिए बाह्योद्यान का प्रयोग भी साभिप्राय किया गया है। बाह्योद्यान शब्द व्यंजित करता है कि नगर में प्रवेश के पूर्व ही पार्वतीवल्लभ शिव के दर्शन हो जाएंगे। इसमें भाग्य व प्रकृष्ट पुरुषार्थ का लाभ ध्वनित है।

6. भ्रातृजायाम् – यक्ष द्वारा यक्षिणी को मेघ की भ्रातृजाया का सम्बोधन देना बहुत सी दुविधाओं को निर्मूल कर देता है। मल्लिनाथ के अनुसार इस सम्बोधन से मेघ यक्षिणी का निशङ्क दर्शन कर सकेगा। पूर्णसरस्वती के मत में इस सम्बोधन से तीन बातें व्यञ्जित

होती है – यक्षिणी की शील सम्पत्ति, मेघ की जितेन्द्रियता, स्वयं का उसमें विश्वासातिशय व सौहार्द्र।

इस प्रकार मेघदूत में शब्दों से ध्वन्यात्मकता दृष्टिगोचर होती है। इन उदाहरणों के अतिरिक्त, अन्य बहुत से स्थानों पर कवि ने शब्दपारखी सूक्ष्मेक्षिका का परिचय दिया है। यहाँ तक कि मेघ के लिए प्रयुक्त सभी सम्बोधन इतने सटीक है कि सन्दर्भ विशेष को ध्वनि द्वारा पुष्ट भी करते हैं । मेघदूत में मेघ के लिए सम्बोधन रूप में बहुत अधिक पर्याय प्रयुक्त किए हैं।

1. **मेघ** – इसका प्रयोग मेघदूत में तीन बार हुआ हैं – **आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुम्। मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः। धूमज्योतिः सलिलमरुतां सन्निपातः क्व मेघः। मेघ की व्युत्पत्ति है 'मेहतीति मेघ' ।** अर्थात् मेघ वह है, जिसमें मेहन (बरसने) की क्षमता हो । प्रथम प्रकरण को देखने से स्पष्ट होता है कि आषाढ के पहले दिन दिखने वाला मेघ मानसूनी मेघ है, जिसका मेहन अवश्यम्भावी है। दूसरे उदाहरण में मेघ का सम्बन्ध है **'अन्यथावृत्तिचेतः'** से । उमडते–घुमडते बादलों को देखकर ही चित्त अन्यथावृत्ति होता है। तीसरे उदाहरण में जड़ पदार्थों का संकलन मेघ 'सलिल' तत्त्व से भी युक्त है, इसलिए उसे मेघ कहा जाना उचित है ।

2. **घन** – इसका प्रयोग सम्पूर्ण कृति में केवल एक बार हुआ है। **अन्तः सारं घन! तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वाम्। रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय।।** (पू० मे० 20)। यहाँ मेघ का सम्बोधन है घन, और घन का अर्थ है– ठोस । पूर्णसरस्वती के अनुसार, घनत्व शब्द से ही तुम वैसे (जैसा कि प्रसंग में अभिप्रेत है) व्यक्त होंगे, यह भाव है । एक ओर यह पद **"अन्तःसारः'** के भाव को व्यक्त करता है तो दूसरी ओर **'पूर्णता गौरवाय'** के भाव को भी प्रतिबिम्बित करता है।

3. **जीमूत** – मेघदूत में इस विशेषण का प्रयोग एक बार हुआ है। **'जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन् प्रवृत्तिम्'** (पू० मे० 4) भरतमल्लिक के अनुसार, जीमूत की व्युत्पत्ति है– **'जीवनं जलं जीवितं च मूतं च बद्धम् अनेनेति जीमूत इति व्युत्पत्तेः** अर्थात् जो जीवन देता है वह जीमूत है और जीमूत जब यक्षिणी के पास सन्देश ले जाएगा तो वह एक प्रकार से उसे जीवन प्रदान करेगा।

4. **पयोद** – इस शब्द का प्रयोग भी एक बार ही हुआ है– **'सन्तप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोद प्रियायाः सन्देशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य'** (पू० मे० 7) पयोद का अर्थ है **पयः ददाति इति पयोदः ।** यहाँ प्रसंग है – सन्ताप दूर करने वाला, प्राण देने वाला। पूर्णसरस्वती के अनुसार **'पानीयं प्राणिनां प्राणां विश्वमेव च तन्मयम्'** – इस स्तुति के अनुसार पयस देने के कारण निश्चित रूप से तुम दाता हो, अतः सब के प्राणदायक हो। इस प्रकार पयः शब्द ताप को दूर करने का सहजात धर्म होने से इसका प्रयोग पूरी तरह से व्यञ्जक हो उठा है। भरतमल्लिक के अनुसार, पयोद से महानुभावता ध्वनित होती है।

इस प्रकार कवि ने सन्दर्भों को दृष्टि में रखते हुए मेघ के लिए ऐसे सम्बोधनों का प्रयोग किया है जो कवि के अभिप्रेत बिम्ब को ध्वनित कर सके, न केवल मेघदूत में अपितु

उनकी अन्य कृतियों में भी सन्दर्भ की भावाभिव्यञ्जना को सम्मुख रखकर ही शब्दों का प्रयोग किया गया है। इन शब्दों में निहित अभिव्यञ्जन को टीकाकारों ने विशेष रूप से उजागर किया है।

अनुसन्धान की समस्या

यहाँ ध्यातव्य है कि काव्य के ऊपर अनेक ग्रन्थ हैं। जिस प्रकार पुस्तकालय के अन्दर ग्रन्थों के होते हुए भी पुस्तकालयाध्यक्ष सभी विषयों का ज्ञाता नहीं होता, ठीक उसी प्रकार काव्यात्मक ग्रन्थों का होने से क्या ? जब तक कि उसका सही प्रकार से उपयोग ना किया जाए। काव्य की सही जानकारी के लिए व्याकरण का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है। जैसा कि हम सभी जानते हैं आज संस्कृत भाषा के माहात्म्य को समझने की इच्छा सभी की होती है, किन्तु व्याकरणात्मक अनभिज्ञता के कारण लोग पीछे हट जाते हैं । मेघदूत जैसे खण्डकाव्य को भी समझना इतना आसान नहीं है तभी तो कहा गया है – '**मेघे माघे गतं वयः**'।

परियोजना का उद्देश्य

जिस प्रकार, ''**विना प्रयोजनं मन्दोपि न प्रवर्तते**'' बिना प्रयोजन के बुद्धिहीन भी किसी कार्य में रूचि नहीं लेता, ठीक उसी प्रकार समाज के हित के लिए व्याकरणात्मक तथ्यों की क्या जरूरत है ? इस बात को पूर्णरूप से सिद्ध करना ही शोध का मुख्य उद्देश्य है। आज के समाज में संस्कृत काव्यों से लोगों का वास्तविकता से परे होना ही इस बात का सबूत है कि इस क्षेत्र में कितने शोध की आवश्यकता है। प्राचीन समय में साहित्यिक विधाओं में निपुणता के कारण ही लोगों के अन्दर ज्ञान, विवेकादि के विषय में सुनने को मिलता है। पर आज ऐसा क्या हो गया ? जिस कारण से हम विज्ञान के क्षेत्र में आगे बढ़ते – बढ़ते इतने पीछे हो गए।

ज्ञानक्षेत्र में शोध परियोजना का योगदान

ज्ञानक्षेत्र में शोधयोजना का संभावित योगदान विचारणीय है। इस शोधकार्य में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग का निर्धारित बिन्दुओं का पल्लवीकरण है। ज्ञान के अनेक क्षेत्र हैं। प्रत्येक वस्तुओं के परम तत्व का साक्षात्कार करना ही ज्ञान है, और **तस्य च विनियोगः इति विज्ञानः**।

परियोजना के लिए शैक्षणिक महत्त्व

परियोजना की शैक्षणिक महत्ता का उजागर तो इसी बात से हो जाता है कि ज्ञान प्राप्त कर कोई भी मनुष्य कुछ भी कर सकता है। शैक्षणिक महत्ता को देखते हुए ही किसी भी विषय पर परियोजना कार्य सम्भव हो पाता है। यदि परियोजना के लिए शैक्षणिक महत्व

को त्याग दिया जाए तो परियोजना ही निष्फल हो जाएगा। परियोजना के विषय में शैक्षणिक महत्ता का सम्बन्ध भी परियोजना के साथ उसी प्रकार होती है जैसे की अंग और अंगी का सम्बन्ध। किसी भी ग्रन्थ का तात्पर्य है – **''सा विद्या या विमुक्तये''** शैक्षणिक महत्व का तात्पर्य यह कि विद्या ऐसी होती है जो मुक्ति प्रदान करती है। अन्त में प्रयोजना की सपफलता की कामना के लिए एक मन्त्र कहा गया है –

'' नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुधा श्रुतेन ।

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनु स्वाम् ''।।

निष्कर्ष

वर्त्तमान समय में इसकी प्रासंगिकता विचार करने योग्य है। आज स्वार्थ निवारण के लिए अनेक विधानों का आविष्कार हुआ है। **ऊर्ध्व सत्त्वविशाला** – इति सांख्ये । **तमसो मा ज्योतिर्गमय** – इति वेदान्ते । जीवन में छाए हुए अन्धकार को दूर करने के लिए साहित्य का योगदान सर्वदा से श्लाघ्नीय है। समाज और देश की आवश्यकता को देखते हुए साहित्य में व्याकरण विषय का शोधकार्य अत्यन्त ही गौरवान्वित करता है, कहा भी गया है– **''प्रेयश्च श्रेयश्च सिद्धिः परमावश्यकता''**।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सिद्धान्तकौमुदी (तत्वबोधिनी टीका) की व्याख्या

2. मेघदूत, 'इन्दिरा', सुबोधा टीका। लेखक – डॉ0 अर्कनाथ चौधरी, प्रकाशक – जगदीश संस्कृत पुस्तकालय, जयपुर, राजस्थान, संस्कृरण – 2012।

3. ध्वन्यालोक, आनन्दवर्धन।

4. वक्रोक्तिजीवितम् कुन्तक।

5. काव्यालंकारसूत्रवृत्ति।

6. मम्मट, काव्यप्रकाश।

7. कुमारसम्भव, कालिदास।

8. मेघदूतम्, कालिदास। 'इन्दुकला' श्री बैद्यनाथ झा शास्त्री, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी।

9. लघु सिद्धान्त कौमुदी, वरदराज भट्टाचार्य।

10. सिद्धान्त कौमुदी, भट्टोजीदीक्षित।

शोध–प्रबन्ध प्रारूप

अध्याय 1. मेघदूत खण्डकाव्य ग्रन्थ एवं उसके लेखक का विशिष्ट परिचय।

अध्याय 2. महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में व्याकरण का महत्त्व।

अध्याय 3. मेघदूत खण्डकाव्य में पाणिनीय व्याकरण का वैशिष्ट्य।

अध्याय 4. मेघदूत खण्डकाव्य में सन्धि, समास तथा प्रत्ययों की विशेषता।

अध्याय 5. उपसंहार ।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची।

****

शोध– पर्यवेक्षक का हस्ताक्षर **शोधार्थी का हस्ताक्षर**